†**श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (गया): भारत न तो तिब्बत के मामले को राष्ट्रसंघ में उठा सकता है और नहीं उसका समर्थन कर सकता है यदि अन्य कोई राज्य उसे राष्ट्रसंघ में उठाता है क्योंकि चीन और तिब्बत के बीच जो करार था उसकी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सामने कोई मान्यता नहीं थी। तिब्बत की स्वायत्तता को राष्ट्र संघ या लीग आफ नेशन्स या अन्य किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने कभी भी स्वीकार नहीं किया है। चीन के साथ यदि हम संघर्ष करते हैं, तो एक और साम्यवाद विरोधी गुट बन जायेगा। इस संघर्ष से रूस और अमरीका दोनों अपने हितों की सिद्धि की कोशिश करेंगे।

हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि तिब्बत के मामले में रूस चीन के साथ है। यदि यह मामला राष्ट्र संघ में गया तो रूस पाकिस्तान का समर्थन काश्मीर के मामले में करेगा। अतः ऐसी स्थिति में चीन से वैर मोल लेना एक बड़ी भारी राजनैतिक गलती होगी।

आज संसार में गोरी व काली जातियों का सवाल है। यह कोई साम्यवाद या लोकतंत्र का सवाल नहीं है। यदि भारत व चीन मिले रहें, तो रूस व अफ्रीकी व एशियाई देशों का संगठन बन सकता है। यदि ऐसा न हुआ तो काली जातियों के लिए परिणाम अच्छा न होगा।

यदि आज हम तिब्बत के मामले में नेताशाही करेंगे, तो भय है कि चीन व भारत का संघर्ष विश्व युद्ध का रूप धारण कर ले। प्रेसीडेण्ट विल्सन ने 'स्व-निर्णय' के प्रश्न को उठाया था। और उसी के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ था। इसे 'स्व-निर्णय' के कारण भारत का बंटवारा भी हो गया।

आज चीन, भारत, रूस, अमरीका, इंगलैंड और फ्रांस सभी एक दूसरे से भयभीत हैं। कोई किसी का स्थायी मित्र नहीं है। बड़े राज्य तो गिरोहों के सरदार है। छोटें राज्यों को या तो उनके दल में शामिल होना होता है या उन्हें नष्ट कर दिया जाता है। भारत, चीन और रूस के बीच संधि होने पर ही हम असुरक्षा के भय से मुक्त हो सकते हैं।

†**प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)**: माननीय सदस्य ने जो संकल्प रखा है, वह देखने में काफी सीधा-सादा लगता है। लेकिन हम इस बहस के दौरान में देख चुके हैं कि उसके पीछे बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय मसले हैं, बड़ी पेचीदगियां हैं जिनके काफी बड़े बड़े नतीजे निकल सकते हैं। मैं समझता हूं कि इस सभा के हर एक सदस्य को तिब्बत की जनता की तकलीफों को देखकर उससे काफी गहरी हमदर्दी है। इसमें तो शकोशुबह की कोई गुंजाइश ही नहीं। और, सभी लोग जानते हैं कि हमने दलाई लामा को ही नहीं, बल्कि तिब्बत के दूसरे १३,००० लोगों को भी अपने मुल्क में शरण दी है। मुझे तो एक भी ऐसी मिसाल याद नहीं जबकि हमने तिब्बत के किसी भी आदमी को अपने मुल्क में आने से मना किया हो। इसी से पता चल जाता है कि इस मामले में हम क्या महसूस करते हैं।

तिब्बत की जनता के लिये हमारे दिल में जो हमदर्दी है, वह तो है। लेकिन अब सवाल यह उठता है कि उस हमदर्दी को जाहिर करने के लिये आखिर किया क्या जाये ठीक-ठीक कौन सा रास्ता अपनाया जाये। कुछ माननीय सदस्यों ने दूसरे मुल्कों के कुछ बुरे कामों के बारे में बड़ी जोशीली स्पीचें दी हैं। इन बातों के बारे में कुछ कहना बड़ा आसान है,

---

†मूल अंग्रेजी में

दूसरे मुल्कों के कामों और तरीकों में खामियां निकालना भी बड़ा आसान है। लेकिन अगर हमारे जैसे किसी मुल्क को कुछ काम करना है, तो उसे एक बचकाना ढंग से नहीं बल्कि काफी सोच-विचार के बाद काम करना पड़ेगा, एक ऐसे ढंग से काम करना पड़ेगा जिसका कुछ नतीजा निकलने की भी उम्मीद हो। मैं पूरे अदब के साथ कहता हूं कि ऐसे मामलों में इस तरह जोशीली भड़कीली बातें करना एक बिलकुल बेकार की बात है; और अगर ऐसे जोश भरे कामों का हम पर कोई उलटा असर पड़े या हमारे उद्देश्य को, हमारी मंजिल को नुकसान पहुंचे तो यह और भी बुरा है।

यह तिब्बत का सवाल एक ऐसा सवाल है जिसे हम कई नज़रियों से देख सकते हैं। इसे हम अपने मुल्क के साथ ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दूसरी तरह के संबंधों के नज़रिये से और चीन के साथ भी उसके ऐसे ही सम्बंधों के नज़रियों से; और भी कई दूसरे नज़रियों से देख सकते हैं। तिब्बत को इतिहास में काफ़ी उलट-पुलट और काफी पेचीदगियां रहीं हैं। और इस वजह से, किसी के भी कोई दावा पेश करने के लिये काफी मसाला मिल सकता है। चीन का दावा है कि कई सौ साल से तिब्बत पर उसकी सम्पूर्ण प्रभुता रही है, या तिब्बत पर उसका आधिपत्य रहा है। इधर तिब्बत के लोगों का दावा है कि सिवाय उन दिनों के जब कि उस पर किसी तरह की गुलामी लादी गई हो, वह बिल्कुल आज़ाद रहा है। यह एक ऐसा मसला है जिससे इतिहास पढ़ने वालों को तो दिलचस्पी हो सकती है। लेकिन हमें उससे कोई मदद नहीं मिलती यह तय करने में कि हम क्या करें। वैसे यह बात तो बिल्कुल सही है कि मांचू सल्तनत के खत्म होने के या कुछ और बाद करीब ४० साल के अर्से में तिब्बत एक तरह से आज़ाद रहा है। हां, १०० फी सदी आज़ाद तो नहीं रहा, लेकिन चीन ने भी अपना दावा भी वापस नहीं लिया। यह सही है। लेकिन असली रूप में वह आज़ाद ही रहा है।

लेकिन मैं पहले कह चुका हूं कि यह बात मानने या न मानने से हमें कोई ज्यादा मदद नहीं मिलती। हां, यह जरूर है कि अगर यह सवाल हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पेश हो तो वह इसके सभी पहलुओं पर ग़ौर कर सकता है। लेकिन यह सवाल वहां पेश नहीं होगा, क्योंकि राज्य इस तरह के सवाल वहां उठाते ही नहीं और फिर हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से चीन का कोई ताल्लुक ही नहीं है।

दो-तीन और भी गौर-तलब चीजें हैं। एक तो यह कि अन्तर्राष्ट्रीय तौर पर तिब्बत को एक अलग आज़ाद देश नहीं माना जाता। उसे एक स्वायतशासी देश तो माना जाता है, लेकिन चीन की सम्पूर्ण प्रभुता या आधिपत्य के नीचे ही। हमारा मुल्क़ आज़ाद होने से पहले, इंगलैण्ड और रूस—सोवियत रूस ही नहीं जारशाही रूस भी—यही मानते थे। और इस मामले से इन्हीं मुल्कों का खास ताल्लुक भी था। बाकी दुनिया तिब्बत की तरफ ध्यान ही नहीं देती थी। वह तिब्बत को एक अजीब सा रहस्यमय देश समझते थे, इससे ज्यादा कुछ नहीं।

इसलिये जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ, तो हमें विरासत में वही हालत मिली जो अंग्रेज़ों के जमाने में थी। हमें उसके फ़ायदे और उसके नुकसान भी विरासत में मिले थे। थोड़े अरसे तक तो हमने उस हालत में कोई दखल नहीं दिया। हमें उसकी कई बातें बड़ी नापसंद थीं। मेरा मतलब है कि हमें तिब्बत में अपने मुल्क के वे कुछ विशेषाधिकार नापसंद थे जो वहां हमारा राज्य न होते भी हमें मिले हुए थे और जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निशानी के रूप में बचे थे। लेकिन पहले एक दो साल में हमारे सामने और भी बड़े-बड़े मसले थे, इसलिये हमें इस मसले को हाथ लगाने का भी वक्त नहीं मिला।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

फिर तिब्बत पर चीन का यह हमला या कहिये अनाधिकार प्रवेश हुआ । हमने कभी भी तिब्बत पर चीन की प्रभुता से इन्कार नहीं किया । इधर हाल में भी हमने उससे इन्कार नहीं किया है । और न सिर्फ़ अपना देश स्वतंत्र होने से पहले, बल्कि चीन में जनवादी सरकार बनने से पहले भी हमने कभी इस बात से इन्कार नहीं किया । सच तो यह है कि हमने जिस ढंग से काम किया है, उससे यही बात साबित होती है कि हम यह मानकर चले हैं ।

इसीलिये जब तिब्बत पर चीन का हमला हुआ तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये थे । चूंकि हमने तिब्बत पर चीन की प्रभुता मान ली थी और दुनिया ने भी उसे मान लिया था, इसलिये कानून और संविधान के मुताबिक़ हम उसके बारे में कुछ यह भी नहीं कह सकते थे । फिर भी हमें वहां जो कुछ हो रहा था, उससे काफ़ी दुख हुआ था और हम काफी उलझन में पड़ गये थे । तिब्बत पर चीन की फ़ौजें चढ़ती आ रहीं थीं और लग रहा था कि जबर्दस्ती तिब्बत पर कब्ज़ा किया जा रहा है । उन दिनों हम ने चीन सरकार के पास कुछ नोट भी भेजे थे । शायद एक दो नोट भेजे थे, काफी नरमी से भरे । उनमें हमने यही उम्मीद जाहिर की थी कि इस मसले को आपसदारी से और शान्ति के साथ सुलझाया जायेगा । लेकिन शायद चीन सरकार ने उस वक्त भी उनका जवाब उतनी ही नर्मी से नहीं दिया था । मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता, लेकिन मुझे कुछ ऐसा ही याद है । मैं उन वाकयात का सिलसिला आपको बता रहा हूं ।

फिर उसके बाद यह हुआ था कि संयुक्त राष्ट्र संघ के एक मेम्बर मुल्क--एल साल्वाडोर--ने वहां तिब्बत के बारे में एक प्रस्ताव रखा । उसमें कहा गया था कि तिब्बत के मसले को जनरल असेम्बली (महासभा) की कार्य सूची में शामिल किया जाये । उसके साथ एक संकल्प भी था जिसमें, तिब्बत पर बिना बात किये गये हमले की निन्दा की गई थी और उसके लिये उचित उपाय करने की बात सोचने के लिये एक समिति नियुक्त करने का सुझाव दिया गया था ।

वहां उसे कार्य सूची में शामिल करने या न करने के बारे में कुछ बहस हुई थी । तब वहां हमारे मुल्क की नुमाइंदगी शायद नवानगर के जाम साहेब करते थे । उन्होंने इस सिलसिले में वहां यही कहा था कि उस मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से ही हल करना चाहिये और उसे इस ढंग से नहीं उठाया जाना चाहिये । मेरा ख्याल है कि उन्होंने साथ में यह भी कहा था कि हमें चीन सरकार की ओर से कुछ आश्वासन भी दिये गये हैं कि वह इस मामले को बातचीत के जरिये शान्तिपूर्ण ढंग से ही हल करना चाहती है, और इसीलिये उसे कार्यसूची में शामिल करना अभी मुल्तवी कर दिया जाना चाहिये । इस सुझाव का समर्थन इंगलैण्ड, अमरीका, आस्ट्रेलिया, सोवियत संघ और यहां तक कि फारमोसा की कुओमितांग सरकार तक ने किया । सभी उसे मुल्तवी करने के लिये राजी हो गये थे, और वही किया गया था ।

जाम साहेब ने वहां यह किस आधार पर कहा था कि चीन सरकार ने हमें आश्वासन दिये हैं ? अभी यहां मेरे पास वे कागज़ात तो नहीं हैं, लकिन जहां तक मुझे याद है चीन सरकार ने हमारे नोटों और हमारे अनुरोधों के जवाब में हमारे पास एक यह संदेश भेजा था कि वह उस मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से बातचीत के जरिये ही तय करना चाहती है । मेरा ख्याल है कि उसने तिब्बत के पूर्वी सीमांत के पास कहीं अपनी फौजों को भी रोक दिया था ।

इसके अलावा दलाईलामा तिब्बत सरकार के कुछ प्रतिनिधि भी इस मामले पर बातचीत करने के लिये पीकिंग भेज रहे थे । अभी कुछ ही दिन पहले तक ल्हासा से पीकिंग जाने का सब से

आसान और सीधा रास्ता हमारे मुल्क में से ही था। गोबी के रेगिस्तान से होकर जाना कहीं ज्यादा मुश्किल पड़ता था। सच तो यह है कि चीन में जनवादी सरकार बनने के बाद भी कई मौकों पर चीन सरकार के प्रतिनिधि हमारे मुल्क से होकर ही ल्हासा गये हैं। यह कहीं ज्यादा आसान था: कलकत्ता से सिक्किम में गंगटोक तक और फिर उससे आगे नाथू ला दर्रे से होकर। तिब्बत सरकार के नुमाइंदे पीकिंग जाते हुए दिल्ली आये थे। मैं समझता हूं कि शायद वे हमसे मशविरा भी करना चाहते थे। यह सब आज से दस साल पहले हुआ था, इसलिये मुझे सभी चीजों का ठीक-ठीक सिलसिला याद नहीं रहा है। वे दिल्ली में कुछ ज्यादा अर्से तक रुके थे; क्यों, यह मुझे ठीक-ठीक याद नहीं। और इन्हीं बातों के कारण हमने संयुक्त राष्ट्र संगठन में वह अपना सुझाव रखा था और वहां उस पर बहस नहीं हुई थी।

बाद में पीकिंग जाने वाले तिब्बत के नुमाइंदों के साथ कोई खास बातचीत नहीं हो पाई, कुछ तय नही हो पाया। उनके पीकिंग पहुंचने से पहले ही तिब्बत में कुछ और घटनायें हो गई थीं। शायद चीन की फौजों ने फिर आगे बढ़ना शुरू कर दिया था और दलाईलामा और उनके प्रतिनिधियों ने उन के साथ समझौता कर लिया था। हो सकता है कि वह समझौता दबाव में आकर किया गया हो, लेकिन वह दलाईलामा वग़ैरह के दस्तख़तों से हुआ था।

इस सिलसिले में, माननीय सदस्य श्री वाजपेयी ने कहा है कि मेरी ओर से कुछ बातों का यक़ीन दिलाने के बाद ही दलाईलामा ने चीन के साथ १७ सूत्रों का समझौता किया था; और वह समझौता चीन के प्रधान मंत्री के हमारे मुल्क में आने के बाद ही किया गया था। उन्होंने सिलसिले को कुछ गड़बड़ा दिया है। मेरी तरफ़ से कुछ बातों का यक़ीन दिलाने का कोई सवाल ही नहीं था और उस वक्त तक न तो चीन के प्रधान मंत्री हमारे मुल्क में आये थे और न मैं चीन गया था। चीन सरकार और दलाईलामा के बीच जब यह १७ सूत्रों वाला समझौता हुआ था, तब तक मैं चीन के प्रधान मंत्री से मिला तक नहीं था। इसलिये हमारी ओर से कोई आश्वासन देने या किसी बात का यकीन दिलाने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हमने तो चीन सरकार के उस संदेश को ही आधार बनाया था, जो हमारे पास भेजा गया था। उसी की बिना पर जाम साहेब ने संयुक्त राष्ट्र संबंधी सुरक्षा परिषद् में कहा था कि चीन सरकार इस मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना चाहती है और इसी वजह से वहां उस प्रस्ताव पर विचार नहीं किया गया था।

उसके बाद १७ सूत्रों का यह समझौता हुआ, जिसमें तिब्बत की स्वायत्तता पर कुछ जोर दिया गया था। अब यह कहना भी गलत होगा कि तिब्बत की स्वायत्तता पर जोर देने के पीछे हमारा कोई दबाव था, या हमारे कहने पर ही उसको समझौते में शामिल किया गया था। इस में तो शक नहीं कि हमारी इच्छा थी कि उस पर जोर दिया जाये। लेकिन जब वह समझौता हुआ, तब हम वहां मौजूद नहीं थे। हमसे पूछा भी नहीं गया था। इसलिये यह कहना सही नहीं है कि चीन सरकार ने हमें कुछ आश्वासन दिये थे और उनको बाद में तोड़ दिया।

असल में हुआ यह था कि उसके कई साल बाद, जब चीन के प्रधान मंत्री यहां आये थे, तब हम में तिब्बत के बारे में कुछ बात हुई थी। उस वक्त दलाईलामा भी यहां थे। मेरा ख्याल है कि बातचीत प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई ने ही शुरू की थी। वह मुझे बताना चाहते थे कि तिब्बत के मामले में चीन का नज़रिया क्या था, इसलिए नहीं कि मैंने उन पर कोई आरोप लगाया था और वह उसकी सफाई देना चाहते थे या उनके लिए ऐसा करना ज़रूरी था, बल्कि इसलिए कि हम दोनों के दोस्ताना तालुक़ थे और इसी वजह से उन्होंने यह जरूरी समझा कि उन्हें मुझे चीन का नज़रिया पूरी तौर से समझा देना चाहिए।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

उन्होंने शुरू यहां से किया था कि तिब्बत हमेशा से चीन राज्य का ही एक हिस्सा रहा है। हमेशा से उनका मतलब था कि पिछले कई सौ साल से। और जब-जब चीन की ताक़त कमजोर पड़ गई थी, तब-तब उन मौकों पर चीन की सम्पूर्ण प्रभुता को ठीक तरह से लागू नहीं किया गया था, लेकिन उनका कहना था कि तिब्बत हमेशा से चीन राज्य का एक हिस्सा ही बना रहा है। आगे उन्होंने यह भी कहा था कि तिब्बत चीन तो नहीं है, लेकिन चीन राज्य का एक हिस्सा जरूर है। तिब्बत में हूण जाति के लोग नहीं रहते। चीन में हूण जाति के लोग रहते हैं, लेकिन उसमें उनके अलावा मंगोल, मांचू, तिब्बती, इत्यादि लोग भी रहते हैं। उन्होंने कहा था कि तिब्बत चीन का एक प्रान्त नहीं है, बल्कि चीन राज्य का एक स्वायत्त प्रदेश है और वे उसकी स्वायत्तता की कद्र करते हैं, उसे बनाये रखना चाहते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने इससे आगे यह भी कहा था कि कुछ लोग यह सोचते हैं कि वे तिब्बत पर कम्युनिज्म थोपना चाहते हैं, लेकिन वह बिल्कुल बेबुनियाद बात है, क्योंकि सामाजिक तौर पर तिब्बत की जनता इतनी पिछड़ी हुई है कि कम्युनिज्म उनसे अभी कोसों दूर है। लेकिन हां, वे उस बहुत ही पिछड़े हुए राज्य में कुछ सामाजिक और आर्थिक प्रगति अवश्य लाना चाहते हैं।

यह सब आज से तीन साल पहले की बात है और उस वक्त भी तिब्बत में, या कहना चाहिये तिब्बत के पूर्वी सीमांत पर, खास तौर पर उस क्षेत्र में जो खास तिब्बत में शामिल नहीं था, पर जहां तिब्बती लोग ही रहते थे, उस खास क्षेत्र में कुछ गड़बड़ी शुरू हो गई थी। अभी कुछ अर्से पहले उस क्षेत्र को चीन में शामिल कर लिया गया था। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि कब, लेकिन यह सब होने से पहले ही उसे चीन में शामिल कर लिया गया था। उस क्षेत्र में रहने वाले तिब्बती लोगों, खम्पा जाति के लोगों, ने चीन सरकार के कुछ कामों को पसन्द नहीं किया था। हालांकि चीन सरकार ने खास तिब्बत में तो कोई भी भूमि सुधार या अन्य कोई सुधार करने की कोशिश नहीं की थी, पर राजनीतिक रूप से वे तिब्बत को अपने कब्जे में रखने में ढील नहीं देती थी। उन्होंने तिब्बत में कोई भी दखलअंदाजी नहीं की थी। प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई ने यही कहा था। उन्होंने मुझ से कहा था : "हम तिब्बत में कोई भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। हम चाहते हैं कि वे स्वयं ही धीरे-धीरे अपना विकास करें।" लेकिन इस पूर्वी क्षेत्र में, जिसे चीन का ही हिस्सा माना जाता था, वहां की खम्पा जाति ने बग़ावत कर दी, एक छापेमार ढंग की बग़ावत शुरू कर दी, जो तीन साल पहले प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई के यहां आने से पहले भी करीब एक साल से चल रही थी। हम ने उसका कोई भी जिक्र नहीं किया था, खुद श्री चाऊ एन लाई ने ही उसका जिक्र करते हुए कहा था कि चीन तिब्बत के अन्दरूनी ढांचे, अन्दरूनी स्वायत्तता, उसके रीति-रिवाजों या धर्म वगैरह के मामलों में कोई भी दखलंदाजी नहीं करना चाहता, लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि चीन वहां बग़ावत या विदेशी दखलंदाज़ी को भी बरदाश्त कर लेगा। मैं नहीं जानता कि विदेशी दखलंदाजी या साम्राज्यवादी दखलंदाजी से उस वक्त उनका मतलब क्या था, लेकिन उनके दिल में कुछ खटका जरूर था किसी किस्म का। मेरा ख्याल है कि उन्हें हमारे मुल्क से तो इतना ज्यादा खटका नहीं था, लेकिन इंगलैण्ड और अमरीका द्वारा तिब्बत में अनधिकार प्रवेश करने का कुछ खटका जरूर था। इसलिए कि इन्हीं देशों की बात उनके दिमाग़ में थी। उन्होंने यह नहीं समझा है कि भारत छोड़ने के बाद इंगलैण्ड को तिब्बत में जरा भी दिलचस्पी नहीं रह गई है। इंगलैण्ड तिब्बत में पहुंच ही नहीं सकता, वहां पहुंचने के जरिये ही उसके पास नहीं हैं। तिब्बत में इंगलैण्ड का कोई नुमाइंदा तक नहीं है; कोई ऐसा आदमी भी नहीं है जो तिब्बत की खबरें तक इंगलैण्ड के पास भेजे। और जहां तक मुझे मालूम है, अमरीका का भी कोई नुमाइंदा तिब्बत में नहीं है तिब्बत में अगर

किसी दूसरे मुल्क का कोई प्रतिनिधि है तो वह सिर्फ भारत का ही है; और शायद सोवियत संघ और मंगोलिया का भी है। तिब्बत में हमारा वाणिज्य-दूत रहता है। मेरा मतलब है कि तिब्बत में कोई भी योरपीय या अमरीकी नहीं है। जो भी हो, उन्होंने मुझ से यही कहा था कि वहां बग़ावत चल रही है। तो इसकी बातचीत भी हुई थी। लेकिन वह सब मुझे समझाने के लिए ही कहा गया था। ऐसी कोई बात नहीं थी कि जैसे मैंने प्रधान मंत्री चाऊ एन लाई को इस मामले में यह आश्वासन देने के लिए मजबूर कर दिया हो। यह मैं इसलिए साफ़-साफ़ कह रहा हूं कि कुछ लोग कह सकते हैं कि हमने तिब्बत के लिए यह इसलिए किया है कि चीन के प्रधान मंत्री ने पहले मुझे इसकी गारंटी दी थी। वह कोई इस तरह की गारंटी नहीं थी। इतना ज़रूर है तिब्बत की स्वायत्तता के बारे में कुछ कहा गया था और मैंने उसे सुना था और सुन कर मुझे खुशी हुई थी। लेकिन अब मैं उसकी बिना पर उन पर कोई आरोप तो नहीं लगा सकता कि आपने एक बात की गारंटी दी थी और अब आप उसे पूरी नहीं कर रहे हैं। हालांकि मैं आपको बता दूं कि जब मैंने तिब्बत की स्वायत्तता के ढांचे को बिल्कुल तहस-नहस होते देखा तो मुझे बड़ा दुःख हुआ था।

तो तिब्बत की यह अन्दरूनी बग़ावत महीने दर महीने, साल दर साल धीरे-धीरे फैलती गई। वह पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ती गई। और मुझे जाती तौर पर जरा भी सन्देह नहीं है कि ज्यादातर तिब्बती लोग उससे हमदर्दी रखते थे, हालांकि इस अवधि में उन लोगों ने उस में हाथ नहीं बंटाया था। और इसकी सीधी वजह यह थी कि, दूसरों की तरह, तिब्बती लोगों में भी जातीयता की भावना, राष्ट्रीयता की भावना बड़ी प्रबल है और वे बाहर के उन लोगों को बहुत नापसंद करते हैं जो उनकी समझ में, उनकी जिन्दगी के अपने तौर-तरीके को, उसके ढांचे को उलटना-पुलटना चाहते हैं। इसी वजह से यह बग़ावत बढ़ती गई और यह सारी घटनायें हुई हैं।

उन सब की ब्यौरेवार बहस से कोई फायदा नहीं, लेकिन मेरा अपना ख़याल है कि ल्हासा में, खास ल्हासा में जितनी भी गड़बड़ी हुई है उसकी जिम्मेदारी कुछ हद तक चीन के गवर्नरों के अपने कामों पर है। जब भी बाहर का कोई शासक किसी गैर-दोस्ताना जनता पर शासन करता है, तो आप सोच सकते हैं कि दोनों में क्या सम्बन्ध होगा। दोनों में अच्छे सम्बन्ध नहीं रहते। शासक और जनता दोनों ही एक-दूसरे से डरते रहते हैं। और जब दोनों तरफ डर हो, तो जाहिर है कि उसका नतीजा बुरा ही निकल सकता है। सच तो यह है कि जहां भी देश पराधीन होगा वहां ये सम्बन्ध अच्छे नहीं हो सकते। तो इस प्रकार तिब्बत में बग़ावत हुई, दलाई लामा को तिब्बत छोड़ कर भारत आना पड़ा और फिर कई घटनायें हुईं। लेकिन उसके बाद की घटनाओं की ठीक-ठीक जानकारी मुझे नहीं है।

मोटे तौर पर, मैं यही कह सकता हूं कि उसके बाद तिब्बत के कई हिस्सों पर चीनी फौजों का दबाव बढ़ गया है और उस फौजी सरकार के नीचे तिब्बती लोगों की स्वायत्तता का नाम भी वहीं रह गया है। हो सकता है कि तिब्बत में होने वाली घटनाओं के बारे में हम जो किस्से सुन रहे हैं उनमें काफी नमक मिर्च भी लगा हो, क्योंकि हम उन किस्सों को तिब्बत से आने वाले शरणार्थियों से ही सुनते हैं और इन मुसीबतजदा शरणार्थियों को काफी तकलीफों का सामना करना पड़ा है, इसलिए वे कोशिश करने पर भी बिना कुछ नमक मिर्च लगाये नहीं रह सकते। बिल्कुल स्वाभाविक है कि वे कुछ बढ़ा-चढ़ा कर सुनायेंगे ही। इसी तरह यह चीज़ बढ़ती जाती है। इसलिए हो सकता है कि हमने जो किस्से सुने हैं वे बढ़े-चढ़े हों। कोई भी जिम्मेदार आदमी उनका कोई सबूत पाये बिना उनको दोहरा नहीं सकता। लेकिन उनसे इतना अन्दाज़ तो लगाया ही जा सकता है कि तिब्बत में काफी कुछ ऐसा हुआ है जिसकी निन्दा ही की जा सकती है, तारीफ़ नहीं की जा सकती। उन से यह

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

तो पता चल ही जाता है कि तिब्बत की जनता ने बहुत तकलीफ़ें झेली हैं और उसे एक साथ रहने वाले लोगों का एक सुखी परिवार कभी नहीं कहा जा सकता।

[अध्यक्ष महोदय पीठासीन हुए]

इससे पहले जब सभा में इस मामले पर कुछ चर्चा हुई थी तो मैंने बताया था इसके बारे में हमारा दृष्टिकोण दो-तीन बातों पर आधारित है। एक तो यह कि हमें तिब्बत की जनता के साथ हमदर्दी है, और दूसरी यह कि हम चीन के साथ अपने दोस्ताना ताल्लुक़ बनाये रखना चाहते हैं। ये दोनों बातें कुछ परस्पर विरोधी मालूम पड़ सकती है और वर्तमान स्थिति में कुछ विरोधी हैं भी और यही मुश्किल भी है। लेकिन हम ने उसकी वजह से अपना बुनियादी नज़रिया नहीं बदला है। तीसरी बात जो है और जो हमेशा रहेगी, वह भारत की एकता और आज़ादी की बात है। इसकी हिफ़ाजत करना ही हमारा सबसे पहला फर्ज़ है।

इस बात को मैं यहां इसलिए दोहरा रहा हूं कि हम अब जो भी कदम उठायें, वह तिलमिला कर या आपे से बाहर हो कर न उठायें। चूंकि हमें बहुत ज्यादा गुस्सा है, इसलिए हम उस गुस्से में बिना आगे की सोचे हुए कोई क़दम न उठायें। हम सिर्फ आज के जमाने के लिए ही नहीं, बल्कि आगे आने वाले, बहुत बाद में आने वाले ज़माने के लिए भी काम करते हैं। मेरा हमेशा से यही ख्याल रहा है कि एशिया के इन दोनों देशों—चीन और भारत—का आपस में दोस्त बने रहना, और जहां तक मुमकिन हो एक-दूसरे के साथ साथ सहयोग करना, बड़ा ज़रूरी है; मैं तो कहता हूं कि अत्यावश्यक है। यह इतिहास का एक बड़ा महत्वपूर्ण तथ्य है और शायद इतिहास में कोई भी ऐसी दूसरी मिसाल नहीं है कि इन दो हजार सालों में, भारत और चीन के सम्बन्धों के इन दो हज़ार सालों में कभी भी दोनों मुल्कों के बीच कोई फ़ौजी मुठभेड़ नहीं हुई। हमारे सम्बन्ध सांस्कृतिक रहे हैं और कुछ हद तक व्यापारिक भी। धर्म के मामले में भी हमारे सम्बन्ध रहे हैं। और इन दो हजार सालों में दोनों देश निष्क्रिय भी नहीं रहे, दोनों ने काम किया है, आगे बढ़े हैं। हमारे लोग दूसरे मुल्कों में जाते थे—उस समय हमारे अन्दर जातियों का भेदभाव पैदा नहीं हुआ था, उस भेदभाव ने हमारे हाथ-पैर नहीं बांधे थे, हमें निष्क्रिय नहीं बना पाया था। उस जमाने में हमारे यहां के लोग चुप नहीं बैठते थे। वे दक्षिण-पूर्व के समुद्रों में जाते थे। उन्हों ने कई मुल्कों में बस्तियां बसाई थीं, साम्राज्यी बस्तियां या उपनिवेश नहीं, स्वतंत्र बस्तियां। सच तो यह है कि सारे दक्षिण-पूर्वी प्रदेश पर भारत का एक ज़बर्दस्त असर पड़ा था। आज भी आप उसे देख सकते हैं। इसी तरह चीन का भी असर पड़ा था। इस तरह इन दोनों ताक़तवर मुल्कों के लोग एक-दूसरे से मिलते थे, लेकिन कभी भी उन में आपस में टक्कर नहीं हुई। यह इतिहास की एक बड़ी गौर-तलब सचाई है। यूरोप और एशिया में भी आप को ऐसी दूसरी कोई मिसाल नहीं मिलेगी।

और मेरे ख्याल में कि अगर आगे चल कर हम दोनों मुल्कों में किसी तरह की स्थायी दुश्मनी सी पैदा हो जायेगी, तो वह भारत और चीन ही के लिये नहीं, बल्कि समूचे एशिया और पूरी दुनिया के लिये एक बड़ी दुखपूर्ण बात बन जायेगी। स्वाभाविक है कि अगर आप कमज़ोर हैं या आप के मुल्क को कमज़ोर और इसलिये छोटा समझा जाने लगे, तो दोस्ती कायम नहीं रह सकती। कमज़ोर और ताक़तवर में दोस्ती चल नहीं सकती। दोस्ती उन मुल्कों में रह ही नहीं सकती जिन में से एक तो दूसरे पर रोब गांठता रहे और दूसरा उस का रोब मानता रहे। यह बात दो आदमियों पर ही नहीं, मुल्कों की दोस्ती पर भी उतनी ही लागू होती है। दोस्ती उन्हीं दो व्यक्तियों में चल सकती है जो दोनों करीब-करीब बराबर के हों, और एक-दूसरे की इज्ज़त करते हों। यही बात देशों पर भी लागू होती है। हम ने इसी बात को सामने रखते हुए भारत और चीन में दोस्ती बनाये रखने के लिये

कोशिश की है। और मैं कहता हूं इतना सब हो जाने या होते रहने के बावजूद आज भी हमारा उद्देश्य यही है, और आगे भी हम यही कोशिश जारी रखेंगे। इस का यह मतलब भी नहीं है कि हम जिस बात को सही समझते हैं उस पर भी झुक जायें या यह कि चीन को खुश करने के लिये अपने मुल्क का कुछ भाग उसे दे दें। दोस्ती कायम रखने या अपना आत्मसम्मान बनाये रखने, अपनी गरिमा बनाये रखने का यह तरीका नहीं है। लेकिन दूरदर्शिता का तकाजा यही है कि ये दोनों बड़े-बड़े देश, अपने अलग-अलग अन्दरूनी ढांचों और नीतियों के बावजूद, एक-दूसरे के दोस्त बने रहें।

मैं जानता हूं कि कभी-कभी गुस्सा दिलाने वाली कुछ चीज़ों को सुन कर एक दूसरे के लिये दोस्ती बनाये रखना बड़ा मुश्किल हो जाता है। कभी-कभी यह देख कर कि हमारे मुल्क के लोगों के साथ नम्रता का बर्ताव तक नहीं किया जा रहा है और चीन सरकार के नोटों में साधारण नम्रता तक नहीं बरती जा रही है, दिमाग़ भड़कने ही लगता है, गुस्सा आ ही जाता है। लेकिन यह भी बात है कि किसी भी बात पर गुस्सा करना या भड़क उठना आसान होता है। लेकिन जिम्मेदार लोगों के लिये बड़ा जरूरी है कि वे अपने को भड़कने न दें, अपने देश की गरिमा को बनाये रखें और अपनी नीतियों को पहले की तरह ही जारी रखें।

कई लोग हम पर आरोप लगाते हैं: "आप के पंचशील का क्या हुआ; आप के वे पांच सिद्धांत कहां गये; क्या खत्म हो गये या दफ़ना दिये गये?—" इसे आप जो चाहें कहें। पर मैं तो समझता हूं कि इस सवाल के बारे में यह एक बिल्कुल ही ग़लत नज़रिया है। पंचशील है क्या? पंचशील या पांच सिद्धान्त तो अपनी जगह हैं ही; हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के मामलों में उन पांच सिद्धांतों को ही सही मानते हैं और मानते रहेंगे, चाहे बाकी सारी दुनिया उन को न भी माने। वे सिद्धांत तो अपनी जगह पर थे और अब भी हैं। भारत और चीन के बीच हुई एक संधि में उन को शामिल करने से ही तो उन को सिद्धांतों का दर्जा नहीं मिला था। हम तो उन को अभी भी मानते हैं। और ज़ाहिर है कि अगर दूसरा देश उन को नहीं मानेगा, तो दोनों में सम्बन्ध रह ही नहीं जायेंगे। लेकिन सिद्धांतों पर तो इस से कोई आंच नहीं आती। उन की सचाई तो खत्म नहीं हो जाती। जब लोगों में कुछ समझदारी पैदा हो जाती है, तो वे उन सिद्धांतों को फिर अपनाने लगते हैं। इसलिये इस में पंचशील के नाकामयाब होने का तो कोई सवाल ही नहीं। चीन या भारत उन को अपनाने में नाकामयाब हो सकते हैं, लेकिन सिद्धान्तों की सचाई तो अपनी जगह रहती ही है। हमारा यही नज़रिया है।

मुझे इस संकल्प के विषय से थोड़ा हट कर कुछ कहने की इजाजत दीजिये। हमें अपने सीमांतों पर और कुछ दूसरी-दूसरी जगहों पर एक मुश्किल का सामना करना पड़ रहा है और वह है तिब्बत में हमारे मुल्क के लोगों के साथ चीन के अधिकारियों का बर्ताव। रोज सुबह मेरा सब से पहला काम तारों का एक पुलंदा खोलना होता है। वह काफी बड़ा पुलंदा होता है। और हर पुलंदे में कम से कम पांच या छः तार इसी मामले के बारे में होते हैं—कभी पीकिंग से, कभी ल्हासा से या ग्यान्त्से से या यातुंग से। उन में सब से हाल की खबरें होती हैं। ग्यान्त्से, यातुंग और ल्हासा से आने वाले तारों से हमें तिब्बत का हाल तो पता चल ही नहीं सकता, क्योंकि बाकी तिब्बत से उन का कोई सम्पर्क ही नहीं रह गया है। वहां के लोग तो सिर्फ अपने वाणिज्य दूतावास या ट्रेड एजेंसी के आसपास की हालत ही जान पाते हैं। इसलिये उन तारों से तिब्बत की हालत का पता नहीं चलता। उन तारों को पढ़ने से दिमाग़ में कई उलझनें पैदा हो जाती हैं। रोज सुबह यही होता है। इन तारों की वजह से, मैं अपना दिन अच्छे मूड में शुरू नहीं कर पाता। मैं इस पर काबू पाने की कोशिश कर रहा हूं। कुछ हद तक तो मैं उन का आदी बनता जा रहा हूं।

[श्री जवाहर लाल नहरू]

सीमांतों पर होने वाली इन घटनाओं की इन मुश्किल समस्याओं को हल करना पड़ेगा। लोग अक्सर मुझ से पूछते हैं कि सीमांत की इन घटनाओं से क्या साबित होता है। ईमानदारी की बात तो यह है कि मुझे नहीं मालूम कि दूसरी तरफ़ के लोग क्या सोच रहे हैं, उन के दिमाग़ में क्या है। मुझे सचमुच नहीं मालूम कि सीमांत पर यह सब क्यों किया जा रहा है ; वे घटनायें स्थानीय अफ़सरों के हमलावाराना रुख की वजह से हुई हैं, या सिर्फ इसलिये की जा रही हैं कि हम कहीं अपने को बहुत-बड़ा न समझने लगें, हम अपनी ठीक जगह पर उतर आयें ; या उन के पीछे और कोई गहरी बात है। मैं इसे नहीं समझ पाया हूं।

मैं सभा को बता दूं कि अभी कल शाम ही हमारे पास चीन सरकार का एक बड़ा लम्बा सा जवाब आया है। हम ने अभी कुछ दिन पहले उत्तर-पूर्वी सीमांत की इन घटनाओं के बारे में जो विरोध जाहिर किया था, उसी के जवाब में। जाहिर है कि उस पर बड़ी सावधानी से विचार करना पड़ेगा। लेकिन अगर एक मोटे तौर पर बताया जाये तो उस में हमारे इन आरोपों से साफ़ इन्कार किया गया है कि चीनी हमारे प्रदेश में घुस आये हैं, कि उन्होंने हमारे दस्ते पर गोली चलाई थी। बल्कि उस में तो उल्टा हम पर ही आरोप लगाया गया है कि हम ने उन के प्रदेश में घुस कर उन पर गोली चलाई थी। मतलब यह कि बिलकुल ही उल्टा कर के चीज़ों को दिखाया गया है।

जाहिर है कि हम उस जवाब पर बड़ी सावधानी और सोच-विचार के साथ गौर करेंगे, क्योंकि वह जवाब काफी लम्बा है, उस में कई तरह की दलीलें दी गई हैं और बहुत सी जगहों के नाम भी ग़िनाये गये हैं। हम जल्द ही, अगले दो-तीन दिनों में ही, उस का जवाब भेज देंगे।

मैं इस सेशन के समाप्त होने से पहले सभा के सामने एक श्वेतपत्र भी रखूंगा, जिस में तिब्बत के बारे में भारत और चीन के बीच हुई संधि के बाद से अब तक यानी पिछले पांच साल में, हमारी और चीन की सरकार के बीच हुआ सारा पत्र-व्यवहार दिया जायेगा, जिस से कि सभा को इस से पहले की सारी बातों की पूरी-पूरी जानकारी हो जाये।

आज परिस्थिति यही है। एक तरफ तो जाहिर है कि हमें अपनी सीमाओं की हिफ़ाज़त करनी ही है। और जब मैं हिफ़ाज़त करने की बात करता हूं तो मैं अपने आप को कुछ रोक कर, अपने उभरते हुए गुस्से को थोड़ा काबू में कर के बोलना चाहता हूं, जिस से कि मैं कहीं जरूरत से ज्यादा आगे न बढ़ जाऊं। इसलिये कि जब देश उत्तेजित हो जाते हैं, और उन की सारी इज्जत का सवाल भी शामिल हो जाता है, तब वे धीरे-धीरे, एक-एक कदम कर के ग़लत राहों पर बढ़ने लगते हैं। इस-लिये हमें हर हालत में अपना संतुलन बनाये रखना चाहिये, इस मायने में बनाये रखना चाहिये कि जहां हम अपनी बात सही समझें, हक़ की बात समझें, वहां मजबूती से अपनी नीति पर डटे तो रहें लेकिन फिर भी दूसरे की बात सुनने और समझने की गुंजाइश बनाये रहें, और जहां भी मुमकिन हो सके समझौते का दरवाज़ा खुला रखें।

सीमा की इन घटनाओं के बारे में, एक मोटे तौर पर, चीन सरकार का कहना है कि हम ने उन पर हमला किया है। यह तो एक ऐसी बात है जिस का ताल्लुक तथ्यों से है। सवाल यह है कि कोई गांव या कोई क्षेत्र हमारे देश का हिस्सा है या चीन का। आम तौर पर जहां भी कहीं ऐसे छोटे-मोटे झगड़े, ऐसे विवाद खड़े होते हैं, तो उन को ले कर दो बड़े-बड़े या छोटे-छोटे मुल्कों का एक दूसरे का खून करने पर तैयार हो जाना, एक-दो मील के क्षेत्र के फ़ैसले के लिये, और वह भी ऐसे ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के मील-दो मील के क्षेत्रों का फैसला करने के लिये जहां कोई आदमी रहता ही नहीं है, एक-

एक दूसरे पर चढ़ बैठना एक कुछ बड़ी अजीब सी, समझदारी से कुछ बाहर की बात मालूम पड़ती है। मुझे तो यही लगता है। लेकिन अगर उस में देश की इज्ज़त और उस की गरिमा का सवाल होता है, तो फिर वह मील-दो मील क्षेत्र का सवाल नहीं रह जाता। तब वह देश के आत्मसम्मान का, प्रतिष्ठा का सवाल बन जाता है। और इसीलिये, उस पर इतना सब कुछ होता है। लेकिन मैं इस मसले को इतना बढ़ने नहीं देना चाहता कि फिर राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के कारण दोनों देशों में से किसी को भी क़दम पीछे हटाने की कोई गुंजाइश न रहे। और दोनों के सामने हथियार उठाने के अलावा और कोई चारा ही न रहे।

†**डा० राम सुभग सिंह** (सहसराम) : चीन सरकार ने अपने सबसे हाल के इस जवाब में दोनों देशों की किस सीमा को स्वीकार किया है ?

†**श्री जवाहरलाल नेहरू** : बिना एक बड़े नक्शे के यह बात मैं कैसे बता सकता हूं ? कुछ गांवों वगैरह के बारे में जो झगड़े हैं, उनको कैसे बताया जा सकता है ? अभी इस वक्त झगड़े का जो रूप है वह तो छोटा-मोटा है, दो मील इस तरफ़ या उस तरफ़ होने से कोई बड़ी बात नहीं बनती। लेकिन मुझे पता नहीं कि उनके नक्शों में क्या है। अपनी तरफ़ से, मैं ने कई बार कहा है कि बरमा से भूटान तक हमारी सीमा मैकमोहन लाइन ही है, और हम इसी को मानते हैं।

हम मैकमोहन लाइन को ही अपनी सीमा मानते हैं और हमारा ख्याल है कि अगर चीन के लोग अपने नक्शों में आधा नेफ़ा एक-तिहाई-आसाम और एक तिहाई भूटान को चीन के हिस्से की तरह दिखाते हैं, तो बहुत ही ग़लत करते हैं। हमें इस पर सख्त ऐतराज़ है। यह तो वास्तव में हमारे देश का अपमान है। यह तो मैं समझ सकता हूं कि कभी किसी ग़लती की वजह से थोड़े अर्से के लिये कुछ हो गया हो, लेकिन अगर कोई दस साल तक हर साल आप से यही कहता रहे कि हम फ़ुर्सत के बाद उसकी जांच करेंगे, तो उसे कोई अच्छा, माकूल जवाब तो नहीं माना जा सकता।

लेकिन हां, एक मोटे तौर पर मैकमोहन लाइन को सीमा मान लेने के बाद, मैं उस लाइन की व्याख्या करने, उसका ब्यौरा तय करने के लिए साथ बैठने को तैयार हूं; उसके मामूली से हेर फेर के लिए तैयार हूं वह तो कोई बड़ी बात नहीं, लेकिन इतने बड़े-बड़े क्षेत्रों, प्रदेशों को इस तरह मानने के लिए कतई तैयार नहीं हूं। छोटी-मोटी एक दो पहाड़ियों के बारे में बात करने के लिए, तथ्यों, नक्शों और सबूतों की बिना पर उनका फ़ैसला करने के लिए बैठने को तैयार हूं। मैं इस मामले में बातचीत के ज़रिये, मध्यस्थता के ज़रिये फैसला करने के लिए तैयार हूं। मैं इसके लिए भी तैयार हूं कि इन छोटे-मोटे मामलों के फैसले के लिए कोई ऐसा पंच चुन लिया जाये, जिसे दोनों देश मानते हों। उसके सामने दोनों देश अपनी-अपनी बात रख सकते हैं। वह तो दूसरी ही बात है। मैं यह इसीलिए मानने को तैयार हूं कि मैं अपने को हमेशा सही और दूसरों को हमेशा ग़लत मानने का क़ायल नहीं हूं। मेरा नजरिया उतना तंग नहीं है। लेकिन इसके लिये सब से पहले इस बात को स्वीकार किया जाना चाहिए कि एक मोटे तौर पर मैकमोहन लाइन ही हमारी सीमा है।

लद्दाख़ की स्थिति कुछ दूसरी है। वहां तक मैकमोहन लाइन नहीं पहुंचती। उसका आधार पुराने जमाने से, सौ सालों से, चली आ रही संधियां हैं। काश्मीर के शासक, महाराजा गुलाब सिंह, जो उस वक्त के पंजाब के सिख शासकों के सामंत थे, और ल्हासा के शासक तथा चीन के सम्राट के प्रतिनिधि के बीच संधि हुई थी। उस संधि में ही लद्दाख़ को काश्मीर राज्य का हिस्सा माना गया था।

---

†मूल अंग्रेजी में

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

उसके बाद, कभी भी उसे ग़लत नहीं ठहराया गया और न अभी उसे ग़लत बताया जाता है लेकिन लद्दाख और तिब्बत के बीच की वास्तविक सीमा को स्पष्टता से तय नहीं किया गया था। उसे वहां जाने वाले अंग्रेज अफसरों ने कुछ हद तक निर्धारित किया था। लेकिन मुझे यकीन नहीं कि उन्होंने कोई बड़ी सावधानी से उस सिलसिले में जांच की हो। उन अफसरों ने ही वह सीमा बनाई थी। हमारे नक्शों में शुरू से उसी को दिखाया जाता रहा है। उस इलाके में लोग नहीं रहते, इसलिए उससे कोई ज्यादा फ़र्क नहीं पड़ता। उस वक्त कभी भी किसी ने भी उसकी कोई परवाह नहीं की।

अब यह तो ठीक है कि हम आपस में बैठ कर छोटी मोटी बातों के बारे में बात करने के लिए तैयार हैं। लेकिन सवाल यह है कि यह बात चीत किस आधार पर, किन शर्तों पर की जाये? पहली तो यह कि पहले की संधियों और आज के नक्शों वग़ैरह के आधार पर हो। दूसरे यह देखा जाये कि अभी तक किस सीमा को माना जाता रहा है। तीसरी चीज़ है भूगोल। भूगोल से मेरा मतलब है उन क्षेत्रों की प्राकृतिक बनावट की विशेषताओं से, जैसे कि छोटी-मोटी पहाड़ियों के सिलसिले आदि। दो देशों की सीमा निर्धारित करने में इन विशेषताओं से बड़ी आसानी होती है।

मैं इस संकल्प के विषय से काफ़ी दूर चला गया था। यह संकल्प तो इसके मुकाबले एक काफी सीधे-सादे मसले के बारे में है। इसके बारे में यह है कि तिब्बत के लोगों के लिए माननीय प्रस्तावक या और भी दूसरे माननीय सदस्यों के दिलों में जो हमदर्दी है, वह तो अपनी जगह है। वह तो एक अलग सवाल है। लेकिन दूसरा सवाल यह है कि अगर हम उस सिलसिले में कोई कार्यवाही करते हैं तो कानून और संविधान की दृष्टि से ठीक होनी चाहिए और उस कार्यवाही का कुछ नतीजा भी निकलना चाहिए, ऐसा नतीजा कि उससे हमें अपने उद्देश्य तक पहुंचने में मदद मिले।

यह कार्यवाही इस नजरिये से, कानूनी नजरिये से कितनी ठीक होगी—अगर हम इस बात पर गौर करें, तो संयुक्त राष्ट्र संगठन इस मामले में सिर्फ दो बातों की बिना पर दखल दे सकता है। एक तो यह कि मानवीय अधिकारों का उल्लंघन किया गया है, और दूसरी यह कि तिब्बत पर हमला हुआ है। लेकिन मानवीय अधिकारों का उल्लंघन करने वाली बात सिर्फ उन्हीं देशों पर लागू होती है जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र संगठन का चार्टर मान लिया हो, यानी जो संयुक्त राष्ट्र संगठन के सदस्य हों। इसलिए जिन को संयुक्त राष्ट्र संगठन में शामिल नहीं होने दिया गया है, जिन्होंने चार्टर को स्वीकार नहीं किया है, उन पर चार्टर लागू नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात लीजिये : हमला। हमला तो एक सम्पूर्ण प्रभुता वाला स्वतंत्र राज्य ही किसी दूसरे सम्पूर्ण प्रभुता वाले स्वतंत्र राज्य पर कर सकता है। लेकिन मैं पहले बता चुका हूं कि दुनियां में तिब्बत को एक अलग स्वतंत्र राज्य नहीं माना जाता, इस हमले से बहुत पहले से नहीं माना जाता, और इसके बाद तो इतना भी नहीं माना जाता। इसलिए इसे हमला कहना भी सही नहीं ठहराया जा सकता।

आप कह सकते हैं कि यह सब कानूनी दलीलें हैं। लेकिन मैं भी तो आप को इसका संवैधानिक पहलू और उसके साथ जुड़ी हुई मुश्किलात की बात ही बता रहा हूं।

अब इसका व्यावहारिक पहलू लीजिये। यानी इस कार्यवाही से फायदा क्या होगा? अब मान लीजिये कि हम कानूनी झंझटों और मुश्किलों पर पार भी पा लें, तब भी क्या होगा? यही न कि

जनरल असेम्बली या सुरक्षा परिषद् में, जहां भी हो, इस मामले पर काफ़ी गरमागरम बहस हो जायेगी, एक ऐसी बहस जो शीत युद्ध के तौर-तरीके की ही होगी । लेकिन वह बहस हो चुकने के बाद, उसे शुरू कराने वाले या उसका प्रस्ताव करने वाले लोग क्या करेंगे ? वे अपने घर वापस आ जायेंगे; बस इससे ज्यादा तो कुछ नहीं कर पायेंगे । दोनों तरफ इतनी गरमागरमी बढा कर वे अपने घर लौट जायेंगे । बस इतने से उनका फर्ज़ पूरा हो जायेगा, क्योंकि वे इससे ज्यादा तो कुछ कर ही नहीं सकते ।

जाहिर है, कोई भी देश तिब्बत या चीन में अपनी फौजें तो भेजेगा नहीं । जब यूरोप के ठीक बीचों-बीच हंगरी में फौजें नहीं भेजी जा सकीं, तो फिर तिब्बत में फौजें भेजने की बात सोचना तो बिल्कुल बेकार है । जाहिर है कि फौजें नहीं भेजी जायेंगी । तब फिर इसका नतीजा सिर्फ यही होगा कि कुछ अन्य देश इसके बारे में और भी गरमागरम रायें जाहिर कर देंगे और यह पूरा मसला शीत युद्ध के दायरे में पहुंच जायेगा, और उससे शायद चीन सरकार और भी चिढ़ जाये । इसलिए, ऐसी कार्यवाही का आखिरी नतीजा यही हो सकता है कि तिब्बत की जनता को कुछ राहत मिलने के बजाय, कष्ट और भी ज्यादा उठाने पड़ जायें ।

संवैधानिक और कानूनी नजरिये से यह सवाल बिलकुल साफ़ नहीं है । जिन लोगों ने इसकी जांच की है, उनका कहना है कि इसे संयुक्त राष्ट्र संगठन में पेश करना मुश्किल है । और अमली नजरिया यह है कि इससे कोई भी अच्छा नतीजा नहीं निकलेगा । तब फिर इसका आखिर मक़सद क्या है ? इस कार्यवाही से सिवा इसके कि हम कुछ हमदर्दी दिखा सकें और अपनी नाराजी जाहिर कर सकें, और कोई भी फायदा नहीं होगा । मैं हमदर्दी और नाराजी जाहिर करने की इस बात को समझता हूं । ठीक है, वह अपनी जगह है । लेकिन अपनी हमदर्दी और नाराजी जाहिर करने की इस इच्छा को अपने ऊपर इतना हावी नहीं होने देना चाहिए कि वह हमें अनजान और खतरनाक राहों पर ले जाये । इसीलिए मैं इस संकल्प को स्वीकार नहीं कर सकता । मेरा सुझाव है कि सभा को भी इसे स्वीकार नहीं करना चाहिए ।

श्री वाजपेयी (बलरामपुर): अध्यक्ष महोदय, मेरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में सदन में जो कुछ भी कहा गया है उसे मैंने गौर से देखा है । जिन सदस्यों ने उसका समर्थन किया है मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं लेकिन जिन्होंने उसका विरोध किया है उनको धन्यवाद देते हुए भी मैं यह कहना चाहूंगा कि कि मैं उनके दृष्टिकोण को ठीक तरीके से समझ नहीं सका ।

तिब्बत की समस्या हमारे सामने है । पहली बार जब तिब्बत का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ में उठा तो जैसा कि प्रधान मंत्री जी ने कहा है हमारे प्रतिनिधि ने उस समय यह आशा प्रकट की थी कि तिब्बत की समस्या शान्ति के साथ चीन के द्वारा वार्ता से हल हो जायगी लेकिन पिछले नौ साल का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि तिब्बत की समस्या को शान्ति से हल करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । चीन ने तिब्बत में बलप्रयोग किया । चीन ने तिब्बत के स्वतंत्र अस्तित्व को मिटाने की कोशिश की और अपने पिछले भाषण में मैं ने कहा था कि आज प्रश्न केवल तिब्बत की स्वायत्तता का या स्वतंत्रता का नहीं है बल्कि प्रश्न यह है कि क्या तिब्बत एक पृथक देश के नाते अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ जीवित रहेगा । यदि भारत सरकार की यह आशा कि तिब्बत का प्रश्न शान्ति से हल होगा पूरी हो जाती तो भारत को और इस सदन को बड़ी प्रसन्नता होती । लेकिन अभी तक जो आसार दिखायी देते हैं उनसे इस बात की आशा नहीं है कि आपस की वार्ता द्वारा अब